❀ श्री ❀

अज्ञात की ओर

(करुण-कहानी)

एक आधुनिक गृहस्थ का
नग्न-चित्र



लेखकः—
"सम्पूर्णदत्त" भरतपुर

प्रकाशकः—
दूल्हाराम शर्मा

प्रथम वार
१०००

मूल्य ।=)

जे० पी० भरतपुर

किं स्थूलेन हि रज्जुना गजपतिर्मतो न बद्धो यदि,
को दण्डन हि किं न येन रिपवश्चण्डानिमुण्डीकृताः ।
किं चार्थेन न येन दुःखसमये सन्दानितास्तर्पिताः,
किं शब्देन समाजदोषदलने यस्यासमर्थाः कणाः ॥१॥

Of what we are of the strong ropes whi·ch can not restrain an elephant; It is no use having a weapon with which use can not kill our enewy. The wealth with which we can not help the poor in time is of no use; And the words spoken are useless if they can not make any improvement in society.

समर्पणः—

श्री वीणाप्रवीणा के
वीणावाद्य-विशारद करकमलों में ।

मातस्त्वैव कृपया कलिता कृतिर्या,
वीणा विशारद कराम्बुजयोस्तवैव।
तामर्पये तव पदाम्बुजवन्दकोऽहम्,
सर्वं तवैव विभवं तव सम्मुखम्वै ॥ १ ॥

प्रस्तवन।

अज्ञात की ओर को नतो पूर्णरूपसे कहानी ही कहा जा सकता और न नाटक ही। कहानी तो इसलिए नहीं कि कहानियों में ायः गान का समावेश नहीं देखा जाता और नाटक इसलिए हीं कि नाटकों में घटनाओं का प्रकाशन पात्रों के सीधे ार्त्तालाप द्वारा होता है। इसलिए यह दोनों का एक सम्मिश्रण सा है।

इसमें एक आधुनिक गृहस्थ का नग्नचित्र खींचने की चेष्टा की गई है। यह चेष्टा सफल है अथवा असफल यह बहुत कुछ पाठक महोदयों की ग्रहण शक्ति पर निर्भर है। न जाने कितने गृहस्थ इस तरह का रहस्यमय जीवन व्यतीत कर रहे हैं। यहां समाज की आंखें पहुंचती ही नहीं यह भी नहीं कहा जा सकता, यद्यपि कुछ अंशों में यह सम्भव हो सकता है। लज्जालुओं की लज्जावृत परिस्थितियों को छोड़कर बहुत सी बातें ऐसी हैं जिनका ज्ञान होते हुए भी सुधार के नाम पर समाज अपनी आंखों पर पट्टी बांधे हुए है। इसका कारण यह है कि समाज भी तो आजकल अधिकतर घरेलू जीवन की आन्तरिक अपवित्रताओं के पुतलों का बना हुआ है। समूह का व्यक्तिगत जीवन ही तो समाज-जीवन है। फिर कहीं यदि प्रत्येक व्यक्ति ही अपनी कलुषित स्वार्थान्धित

किं स्थूलेन हि रज्जुना गजपतिर्मत्तो न बद्धो यदि,
को दण्डेन हि किं न येन रिपवश्चण्डा विमुण्डीकृताः ।
किं चार्थेन न येन दुःखसमये सन्दानितास्तर्पिताः,
किं शब्देन समाजदोषदलने यस्यासमर्थाः कणाः ॥१॥

Of what we are of the strong ropes which can not restrain an elephant; It is no use having a weapon with which use can not kill our enewy. The wealth with which we can not help the poor in time is of no use; And the words spoken are useless if they can not make any improvement in society.

समर्पणः—

श्री वीणाप्रवीणा के
वीणावाद्य-विशारद करकमलों में ।

मातस्तवैव कृपया कलिता कृतियाँ,
वीणा विशारद कराम्बुजयोस्तवैव।
तामर्पये तव पदाम्बुजवन्दकोऽहम्,
सर्वं तवैव विभवं तव सम्मुखम्वै ॥ १ ॥

प्रस्तवन।

अज्ञात की ओर को नतो पूर्णरूपसे कहानी ही कहा जा सकता है और न नाटक ही। कहानी तो इसलिए नहीं कि कहानियों में प्रायः गान का समावेश नहीं देखा जाता और नाटक इसलिए नहीं कि नाटकों में घटनाओं का प्रकाशन पात्रों के सीधे वार्त्तालाप द्वारा होता है। इसलिए यह दोनों का एक सम्मिश्रण सा है।

इसमें एक आधुनिक गृहस्थ का नग्नचित्र खींचने की चेष्टा की गई है। यह चेष्टा सफल है अथवा असफल यह वहुत कुछ पाठक महोदयों की ग्रहण शक्ति पर निर्भर है। न जाने कितने गृहस्थ इस तरह का रहस्यमय जीवन व्यतीत कर रहे हैं। यहां समाज की आंखें पहुंचती ही नहीं यह भी नहीं कहा जा सकता, यद्यपि कुछ अंशों में यह सम्भव हो सकता है। लज्जालुओं की लज्जावृत परिस्थितियों को छोड़कर बहुत सी बातें ऐसी हैं जिनका ज्ञान होते हुए भी सुधार के नाम पर समाज अपनी आंखों पर पट्टी बांधे हुए है। इसका कारण यह है कि समाज भी तो आजकल अधिकतर घरेलू जीवन की आन्तरिक अपवित्रताओं के पुतलों का बना हुआ है। समूह का व्यक्तिगत जीवन ही तो समाज-जीवन है। फिर कहीं यदि प्रत्येक व्यक्ति ही अपनी कलुषित स्वार्थान्धित

के कारण अपने को त्याग व सच्चरित्रता की चिन्मय मूर्ति बनाने की चेष्टा न करे तब तो भ्रष्टतारूपी हिरण्यकशिपु का बध करने में भगवान् नृसिंह देव ही समर्थ हो सकते हैं। महान् आश्चर्य की बात है कि भ्रष्टताओं को भ्रष्टताओं के रूप में स्वीकृत करता हुवा भी समाज आज ज्यों का त्यों औंधे मुंह पड़ा हुआ है। सुधार की भावना श्रुतिमधुर और वर्णनमधुर होते हुए भी कार्यरूप में परिणत नहीं की जाती। इसका कारण मनीषियों को अविदित नहीं है।

इन शब्दों के साथ समवयस्क समाज के सजीव खम्भों से आशा की जाती है कि वे भ्रष्टता के नग्न नृत्य को रोकने का कष्ट करेंगे।

विनीतः—

"सम्पूर्ण-दत्तः"।

"श्वेताम्भोरुहराजितां रविकरोत्फुल्लारविन्दालये,
लीलालेशविलोकितात्म सकलां दीप्ताननां तेजसा।
हस्तैःपुस्तकमक्षमालमनिशं गृह्णान्विशुद्धात्मनाम्,
भक्तानाम भयङ्करीं सुरवरां वीणाप्रवीणां भजे॥ १॥"

अज्ञात की ओर।

जिस समय श्रीमान् ताशे वाले एक थांद का कुरता पहन कर कन्था-धारी योगीश्वर की सी वृत्ति किसी भारतीय वर-यात्रा का नेतृत्व कर रहे होते हैं उस समय के अद्भुत दृश्य को न देखना भला स्वर्णावसर को खोने के अतिरिक्त और क्या हो सकता है?

जिन महानुभावों को कभी ऐसे मनोनयनानन्दकर दृश्य देखने का सौभाग्य प्राप्त नहीं हुवा उनका तो इस प्राचीन सभ्यता प्रधान मानव जगत् में जन्म लेना ही व्यर्थ है।

जिस समय ये अपनी धङ्गड़ पप्पड़ धूम धमा धम करते हुए अच्छे २ घराने के स्त्री पुरुषों का अनोखे गर्व के साथ नेतृत्व ग्रहण करते हैं अहा! हा!! मेरे मस्तिष्कतंतुओं में तो साक्षात् देवराज के गन्धर्वों की पखावज का शब्द भी कुछ कुछ नीरस सा प्रतीत होने लगता है। इतना ही नहीं, यदि कहीं बाजार में कुछ रसिकों की भ्रकुटियां इनके कर्णविवरप्रिय वाद्यनाद को अपनी चेष्टाविशेषों से प्रशंसनीय बतलाने लगें तब तो एक घेरा बांधकर तूम तड़ातड़ के तीव्र घोष के साथ अपने शरीर के अङ्ग प्रत्यङ्गों से भगवान् शंकर की सी नृत्य-कला का अभिनय करते हुए जब तक ये अपने प्रिय भक्तों को प्रसन्न नहीं कर लेते तब तक मजाल क्या है कि टस से मस

हो जायँ। इनके तासों के दव्यनाद के सम्मुख इनके अनुगामी श्रीमान् बाजे वालों का वाद्यनाद तो असन्तोषकरण तथा तुलना में कई गुना हेय समझा जाता है। तभी तो इनके "चकई के चकदम, पीपर मुकदम। चना चौधरी मटर गुलाम। सरसों ठाढ़ी करे सलाम" नोट्स के प्रवृत्त होते ही बेचारे अपने बाजों में फूंक मारना बन्द कर देते हैं। यदि भूल से बजाते भी रहें तो बेचारों को स्तब्ध होने का सङ्केत कर दिया जाता है।

इसी धूम धड़ाके के साथ आज सुशील की वरयात्रा की निकासी हो रही थी। बड़ी २ मूंछों पर बिच्छू के उठे हुए डङ्क के समान ताव दिये हुए सुशील के काका, ताऊ तथा बरातीगण गर्व के साथ तांगों में अकड़े चले जा रहे थे। सम्भव है इससे बढ़कर उन्हें कोई प्रसन्नता का अवसर नहीं था। भोजन की तो कोई बात ही न थी, वह तो तीन चार दिन तक बेटी वाले के दरवाजे पर छापा मारना था सारी चिन्ताएँ किनारा कर चुकी थीं। अब तो भङ्ग पीने, मिठाई उड़ाने तथा अनियन्त्रित जिह्वा देवी के बल पर पुरनारियों से उपहास करने की नई २ विधियां सोची जा रही थीं। अपने को चातुर्य का साक्षात् अवतार किस तरह सिद्ध कर सकेंगे' यही विचार मस्तिष्क से टकरा रहे थे। बढ़िया २ कपड़े आज के ही लिए तो रख छोड़े थे जिनको डाटकर आज लकापक बने हुए थे।

थोड़ी देर में बरात एक मन्दिर तक आ पहुँची। यहां पर घर के कुछ देर विश्राम करने का आयोजन किया गया था। सुशील नतमस्तक होकर भगवन्मूर्त्ति के समक्ष खड़ा हो गया। मन ही मन प्रणाम किया। फिर एक गहरी सी आह भरकर एक नवीन उत्तरदायित्व के लिए प्रभु से एक नवीन शक्ति की याचना करने लगा। जैसे ही चलने लगा कि एक धर्मधुरन्धर कुटुम्बीजन के आदेशानुसार कुछ द्रव्य प्रभु के चरणों में

उदासीन-भाव से भेंट किया किन्तु इस उदासीनता में भक्ति-हीनता नहीं थी। चूँकि वह सर्वस्व प्रभु के चरणों में समर्पित कर चुका था अतः अब उसे बाह्य उपचार अनावश्यक से प्रतीत होते थे।

बरात ने प्रस्थान किया। जैसे २ बेटी वाले का घर समीप आता था वैसे २ ही बरातियों के नखरे चौगुने होते जाते थे। जब पुरनारियों की आँखें उन पर पड़ीं तब तो उनके मिजाज का ठिकाना न रहा। कोई इस करवट बैठता, कोई उस करवट; सारांश है कि क्षण-क्षण में मुद्रायें बदली जाने लगीं। एक ओर लाल, पीली, हरी पगड़ी बाँधे, काजल लगाये बूढ़े अपनी पोपली ठोड़ी को व्यायाम करा रहे थे। दूसरी ओर देहाती जवान तिरछा साफा बांधे, काजल लगाये, पलकों पर पीला चन्दन लगाये, कानों में सोने की मुदियाँ पहने, ढीली बाँह का कुर्ता और अनुपातहीन घोंटू तक धोती काछे सैन मटका २ कर हास्यपूर्ण वक्रोक्तियां करते अपने मन में यह समझ रहे थे मानों सम्पूर्ण दर्शक उन्हीं की पुण्य लोचन सुपावनी मधुमयी मूर्त्ति पर मुग्ध हो रहे हों। एक ओर बच्चे काजल का डठौना माथे पर लगाये, चमकती टोपी ओढ़े, भोली भाली सूरत से वास्तव में पुरवासियों का हृदय हर रहे थे। इनके अतिरिक्त एक दल और भी था। यह बाबू लोगों की पार्टी थी। ये लोग शूट बूट डाटे, बाल सम्हाले तथा गढ़े में घुसी हुई आँखों की खूबसूरती को चश्मे में छुपाये ताजिया की तरह हलते जनवासे की चाल से चले जा रहे थे। इनके पिचके गाल पारस्परिक प्रेम का अद्भुत उदाहरण उपस्थित कर रहे थे। ऐसा प्रतीत होता था मानो ये बेचारे एक दूसरे के वियोग में सूख २ कर एक दूसरे का आलिंगन करने की चेष्टा कर रहे हों। इस प्रकार यह पार्टी जहाँ-तहाँ स्वागत के पान

चवाती अपने को कामदेव का प्रत्यचावतार समझ झूमती चला जा रही थी।

आखिरकार बरात जनावास में पहुँच गई। सब लोग भंग का अण्टा चढ़ाकर शौचादि से निवृत्त होने लगे। सुशील भी मध्यस्थ भाव से एक लोटा लेकर जंगल की ओर चल दिया। 'प्रवाण' की मनोगत भावनाएँ कैसी होंगी! दोनों हृदयों में जो कि जीवन के इस क्षण तक सर्वथा अपरिचित हैं अब विचारसामञ्जस्य का स्रोत बहेगा या नहीं। वह मानवता का मूल्य द्रव्यदृष्टि से स्थिर करेगा क्या?!!!' इत्यादि विचारों में मग्न वह चला जा रहा था। नन्हे से बड़े तक प्रत्येक वृक्ष की पत्ती २ आज उसे अनुपम सन्देश सुना रही था अकथनीय भयमिश्रित से प्रहर्ष से उसके हृदय की गति कुछ तीव्र हो चली थी कि वह एक ऐसे बगीचे में पहुँचा जिसे देखने से प्रतीत होता था कि वह किसी दिन अपनी मनोहरता के लिए अद्वितीय ही रहा होगा। पास में एक सूखा तालाब था सूखी सी एक कुटिया के द्वार पर लिखा था:—

"जो जन जग का अनुभवी नहीं वह अनुभव-वैभव क्या जाने।
जिसको जग से अपराम नहीं वह अपरति की रति क्या जाने॥ १
लहराते सर की हँसावलि सूखे सर पर क्यों कर आवे।
उपवन का मृदुल-विहारी वन-कण्टकमय क्षिति पर क्यों जावे॥ २
फूले कमलों का वह भौंरा सूखी सी पङ्कज कलियों से।
क्या लेगा राग सुना कर के कुम्हलाती कुवलय नलियों से॥ ३
ओ आशा के पथिको, जावो रसिको, जावो अपनी राहें।
भोगो तुम तो उन्मत्त बने भरने दो जो भरते आहें॥ ४
पर याद रखो इक दिन होगा तुम आहें भरते आओगे।
नैराश्य-चक्र के संभ्रम में तुम भमें भमें मर जाओगे॥ ५
मैं अधिक नहीं कुछ कहता हूँ पछताओगे पछताओगे।

भौतिक भोगों की अनुपस्थिति में तड़फ तड़फ मर जावोगे ॥ ६
इनके होते ही हृल्लतिका जल सिञ्चिता सी लहलाती है।
अनुपस्थिति में इकली आतप-सन्ताड़ित सी मुरझाती है ॥ ७
क्या कहें, हाय! हृदयो, समुपस्थिति बड़ी मनोहर होती जो।
जिसका जिससे अनुराग बड़ा वह वस्तु न नश्वर होती जो ॥८"

यह पढ़ कर सुशील भौचक्का सा खड़ा देखता रहा। कुछ समझ में न आया। इसके लेखक की खोज में वह कुटी के भीतर गया। एक महात्मा आसन पर विराजे हुए थे। सन्मुख एक भगवान् कृष्ण की चित्रमय मूर्ति विराजमान थी और महात्मा जी की अश्रुधारा भगवच्चरणों में गिर रही थी। उनके पास न कोई चन्दनादि सामग्रियाँ थीं और न कोई घण्टा घड़ियाल ही जिनको ठोक पीटकर वे भगवान् को रिझाते। केवल जो कुछ था वही अनवरत अश्रुधारा। उनके मुख पर दिव्य तेज था। सुशील के प्रणाम करने पर प्रश्नात्मक दृष्टि से उसकी ओर देखा और एक आसन की ओर संकेत किया। सुशील ने उन्हें राजर्षि शब्द से सम्बोधन करके कुछ उपदेश देने की प्रार्थना की। इस पर उन्होंने कुटी पर के लेख की ओर संकेत किया। किन्तु वह कुछ अधिक जानने की इच्छा वाला असन्तुष्ट की भांति देखता रहा। महात्मा जी ने उसे प्रतिभाशाली समझकर अपना अनुभव बतलाना प्रारम्भ किया:—"मैंने राजकुल में जन्म लिया है। आज से ५ वर्ष पहिले मेरे विवाह के समय मेरी आयु २१ वर्ष थी। जब से मैंने होश सम्हाला तब से स्वभाव से ही मैं कुछ चञ्चल था। जैसे-जैसे आयु बढ़ती गई वैसे-वैसे ही मेरी चञ्चलता भोगस्पृहा की ओर अग्रसर होती गई। २१ वर्ष की आयु में एक खूबसूरत जमींदार की लड़की के साथ मेरा विवाह होगया। मैं स्त्री में इतना आसक्त था कि एक क्षण को भी उससे अलग

रहना मुझे भार प्रतीत होता था। प्रेम इतना बढ़ता गया कि मैं अन्तःपुर से निकलता भी न था। इस लिये राज्य का पूर्ण भार मेरे छोटे भाई को उठाना पड़ता था। मेरे पिता माता पहिले ही मुझे राज काज सौंप कर राज्य से कुछ दूर के एक पर्वत पर रहने लगे थे। लगभग दो महीने इसी अवस्था में बीत गये।

एक दिन की बात है कि मैं अपनी स्त्री के साथ महल के पीछे वाले भाग में घूम रहा था। जब दोनों बाग में से घूम कर लौटे तो पत्नी कुछ अशान्तचित्त सी दीख पड़ी। अशान्ति बढ़ती ही गई। आखिरकार अर्धरात्रि के समय उसे अधिक विह्वल देखकर अपनी गोद में लिटाते हुए मैंने पूछाः—"प्रिये, आज व्याकुलता का क्या कारण है?" उत्तर में उसकी आँखों से दो आँसू निकल पड़े। रुद्धकण्ठ से दो शब्द भी निकलेः— "क्षमा करना, मैं आप की कुछ सेवा न कर सकी।" फिर मैंने पूछा— "ऐसे विचित्र उत्तर का क्या अभिप्राय?"

"कभी याद आजाय तो याद कर लिया करना। बस यह अन्तिम मिलन है। चाहो तो मेरे अनुराग को श्रीकृष्णानुराग में परिवर्तित कर देना क्यों कि अब यह आत्मा उसी परमात्मा में विलीन होने जा रहा है।" यह कहती वह इस प्रकार खड़ी हुई जैसे दीपक बुझने से पहले अपनी सम्पूर्ण ज्योति केन्द्रित करके प्रज्वलित हो उठता है और फिर मेरे पैरों का चुम्बन करती हुई सदा को सो गई।"

यह सुनाते २ महात्मा जी की अश्रु धारा और भी वेग से बहने लगी वे क्षण के लिए नेत्र मूँद गये। सुशील किंकर्तव्य विमूढ़ सा उनकी ओर ताकता रहा। फिर नेत्र खोलकर बोलेः— "बस, तभी से मैं इस सूखी कुटिया में रह कर आँसू बहाया करता हूँ। इन आँसुओं को आँसू बहाने वाला ही समझ सकेगा। संसार के अनुभवहीन पुरुषों को तो मैं कोरा

शृङ्गारप्रेमी और हास्यास्पद हो सकता हूँ।" यह कहकर वे मौन हो गये। समय अधिक हो चुका था। सुशील ने महात्मा जी से आज्ञा माँगी और उन्होंने भी उसे आशीर्वाद देकर विदा किया।

(२)

सुशील का विवाह हो गया। रिश्तेदार सब अपने २ घर चले गये थे। सर पर ढाई हजार का कर्जा था। दहेज में केवल ५००) मिले थे। करमचन्द्र ने कर्जा इस शर्त पर दिया था कि दहेज आते ही कुल रुपया चुकाना होगा। किन्तु बेचारे शान्तचित्त सुशील को दहेज कैसे मिल सकता था? दहेज तो उन चुस्त चालाक हैसियतवन्दों को मिला करता है जो खूब ठोक बजाकर पहले ही ठहरा लेते हैं। किन्तु जो ऐसे लज्जापूर्ण व्यवहार को घृणित समझता है उस बेचारे लज्जालु सुशील को दहेज क्योंकर मिलता। उसकी आवश्यकताओं का कौन अनुभव करता और क्यों करता। प्रतिभाशाली पढ़ा लिखा होने पर भी उसका महत्व कौन समझता। धूलि में पड़े हीरे को जौहरी के अतिरिक्त कौन पहचानता।

सेठ जी ने सुशील को बुलावा भेजा। सुशील भी ५००) लेकर सेठ जी के अर्पण करने चल दिया। सेठ जी करोड़ों के आदमी थे। अनाज का व्यापार करते थे तथा विशुद्ध खादी पहनते थे। जब सुशील दुकान पर पहुँचा तो वे शिकार पचाते हुए मगर की तरह गद्दी पर इधर से उधर करवटें बदल रहे थे। सुशील को देखकर बोलेः—"कहिये, आपकी शादी हो गई?" सुशील नतमस्तक होकर रुपये देने लगा। सौ सौ के पांच नोट देकर सेठजी आग पितङ्गा हो गये। चेष्टा बदल कर बोलेः— "मैं तो अपने वायदे से पैसा कम न लूंगा।" सुशील की आंखों से आंसू छलक पड़े। ये आंसू नहीं थे अपितु आंखों

द्वारा हृदय पिघल २ कर निकल रहा था। मन ही मन सोचने लगा—"हाय विधाता, क्या संसार की सम्पत्ति पर इन हृदयहीनों का ही अधिकार है? व्यापार के नाम पर झूंठ बोलकर गरीबों का खून चूसने वाले इन लुटेरों को सेठ के नाम से पुकारा जाता है। विशुद्ध खादी पहन कर ये रंगे स्यार काँग्रेस के स्थानीय नेता बनकर भोली भाली कष्ट पीड़िता जनता की आंखों में धूल झोंक रहे हैं। ये खून चूसने वाली जोखें आपके सृष्टिसागर में खिले हुए कमलों का भी पराग चूसने की चेष्टा करने लगी हैं।" आंसू पोंछकर बोला—"सेठजी, मैं आपको १५००) रु० और दे सकता हूँ। इस तरह आप २०००) रु० इस समय जमा कर लीजिये। ५००) रु० बाद में दे दूंगा।" किन्तु सेठजी नहीं पिघले। स्वार्थ के लिए यदि कहीं ५०००) रु० रिश्वत के देने पड़ते तो प्रसन्नता से दे सकते थे किन्तु सुशील से ५००) रु० कुछ दिन बाद नहीं ले सकते थे। ऐसे आंसुओं से पिघलने वाले होते तो भला आज सेठ बने कैसे रह सकते थे। उन्होंने २५००) रु० अभी दाखिल करने को कहा।

सुशील ने चारों ओर विचार दौड़ाये कि कहां से रुपये मिल सकते थे। किन्तु उसे कोई भी आदमी ऐसा नहीं जँचा जो उसकी सहायता कर सकता था। विवाह में ज्यौनार न करने के कारण मौहल्ले वाले पहले ही रूठे हुए थे। सुशील को कहीं सहारा न मिला। आखिरकार वह सेठजी से बोला—"यदि आप ५००) रु० बकाया नहीं कर सकते तो कुछ दिन के लिए मुझे नौकर रख लीजिए।" सेठजी ने ३०) रु० माहवार पर उसे नौकर रख लिया और इस शर्त पर कि उसे २०) रु० माहवार बतौर इन्स्टालमेण्ट के देकर कुल रुपया २५ महीने में चुका देना होगा।

इस प्रकार वायदा करके (५००) रु० की खोज में बेचारा घर पर आया। उदास होकर पलँग पर लेट गया। प्रवीणा पास आ खड़ी हुई। मन्दस्वर में बोली—"वैसे तो मैं जिस दिन से आई हूँ आपको उदास ही देख पाती हूँ। किन्तु आज ऐसी गम्भीरता क्यों है? क्या मेरा व्यवहार आपको दोषपूर्ण दिखाई देता है?" यह कहकर प्रवीणा उत्तर की प्रतीक्षा करने लगी। कुछ देर की स्तब्धता के अनन्तर सुशील बोला—"प्रवीणे, तुम्हारा विवाह किसी और जगह होता तो अच्छा होता।"

"क्यों?"

"मैं तुम्हारी आवश्यकताएँ पूरी न कर सकूँगा।"

"मुझे कुछ आवश्यकता ही नहीं।"

"मेरे साथ कष्ट बहुत सहने पड़ेंगे।"

"आपके पीछे सब कुछ सह लूँगी।"

"मुझे इस समय तुम्हारा जेवर चाहिए।"

"यह लीजिए।"

"इसे देने में कुछ सँक्षोभ तो नहीं?"

"हृदय दे चुकी हूँ। उसकी तुलना में यह कुछ भी नहीं है।" १५००) रु० का सुनहरा जेवर लेकर सुशील सेठजी के पास पहुँचा। इस तरह सेठजी ने २०००) रु० जमा कर लिए। सुशील को स्टेशन पर अनाज के बोरे लदवाने तथा उतरवाने का काम सौंपा गया। जेठ की कड़कड़ाती धूप में बेचारा नङ्गे पैरों स्टेशन जाता था तथा इसी तरह प्रतिदिन सुबह से शाम तक बड़ा परिश्रम करके सन्ध्या को घर लौटता था। पैरों में बिवाई फट गईं थीं। १०) रु० में दोनों स्त्री पुरुष किसी तरह पेट पालते थे। फटे पुराने कपड़े पहने सत्य पर स्थित हुए बेचारे दिन काट रहे थे। प्रवीणा वीणा बजाना अच्छा जानती

थी। दिन भर के कष्टों को भुला बेचारी रात्रि में पति को प्रसन्न करने के लिए वींणा बजाया करती थी। सुशील भी अपनी इस आत्मवती पतिव्रता की सहानुभूति पाकर क्षण के लिए सब कष्ट भूल जाता।

इस तरह २५ महीने बीत गये। इतने दिन की कड़ी मेहनत तथा खाने को पौष्टिक पदार्थ न मिलने से चिन्ताग्रस्त सुशील का स्वभाव बहुत बिगड़ गया था। यही अवस्था प्रवीणा की भी थी। हाय! इन निर्दोष स्त्री पुरुषों के रहस्यमय जीवन को कौन जानता था। सेठजी का सब कुछ चुका कर सुशील नौकरी की तलाश में चला। शहर के सुपरिन्टैन्डेन्ट ऑफ पुलिस अभी त्याग पत्र देकर गये थे। सुशील को पता लगा। वह योग्यता में कम न था।

अपनी योग्यताओं का वर्णन करते हुए उसने एक दरख्वास्त पेश की दरख्वास्त मंजूर हो गई। केवल 'पर्सनल इण्टरव्यू' बाकी था। जैसे ही सुशील इण्टरव्यू के लिए गया कि उसकी बिगड़ी हुई 'पर्सनलिटी' ने सारे किये पर पानी फेर दिया। हाय! गरीबी यहां भी रोड़ा अटका रही थी। बेचारा हताश होकर घर लौटा। घर पर आते ही पत्नी ने कहा—'कल के लिए अनाज नहीं है। आज ही एक समय के लिए भोजन बनाया है। आपकी एस० पी० की पोस्ट वाली दरख्वास्त में क्या हुवा ?" सुशील ने सिर लटकाये कहा—"कुछ नहीं, दूसरा आदमी ले लिया गया।" कुछ देर पश्चात् प्रवीणा की ओर देख कर बोला—"लाओ आज तुम्हारा गान और सुन जायँ।" प्रवीणा का ध्यान किसी दूसरी ओर आकृष्ट था। उसने इन रहस्यमय शब्दों को नहीं सुना। थोड़ी देर बाद नित्य नियमानुसार वीणा बजाने लगी। गान प्रारम्भ हुवा—"जीवन-भर के दुखिया रोले।

सारा जग जाग जायगा ओ तेरे इस रोने से भोले।
जीवन भर के दुखिया रोले ॥ १ ॥

सम्भव है सुख औ दुख तो हों कुछ अन्य दशा, तू मान रहा।
जग में अपने अनुकूलों को ही अपना सुख पहचान रहा।
जीवन की ये टूटी घड़ियाँ जैसे चाहे वैसे पोले।
जीवन भर के दुखिया रोले ॥ २ ॥

फिर भी तेरे इस रोने में हैं कितने ही सङ्केत भरे।
मतवाला जग यह क्या समझे तू अपने मन में सोच अरे।
अपने ही आँसू बूँदों से अपने ही नैनों को धोले।
जीवन भर के दुखिया रोले ॥ ३ ॥

तेरे रोदन रहस्य को जो कुछ समझ जांय देवेश्वर भी।
है शपथ पथभ्रष्टारत की बह निकले अश्रुधार अभी।
कलरवकर गन्धर्व-स्वर भी नीरव रोने का ही होले।
जीवन भर के दुखिया रोले ॥ ४ ॥

यह बीत जायगा युग तेरा जीवन समाप्त हो जायेगा।
तेरी इस करुण-कहानी को हानी को कौन सुनायेगा।
हा! होगा जग में कौन कि जो तेरी गौरव-गाथा खोले।
जीवन भर के दुखिया रोले ॥ ५ ॥

तू है इक क्षुद्र जीव जग का फिर भी महान आदर्श लिए।
ना जाने अपने जीवन में तूने क्या क्या बलिदान किये।
तेरा इक तुच्छ त्याग भी वैभव-शाली त्यागों को तोले।
जीवन भर के दुखिया रोले ॥ ६ ॥

भव-वैभव-दर्शन पाकर जो उजड़े उर ओज उबलता है।
इससे संक्षुब्ध हुए तेरे मन में इक मान मचलता है।
संक्षोभ भरी गहरी लहरी-अङ्कित-आनन वाला होले।
जीवन भर के दुखिया रोले ॥ ७ ॥

ये रोने की बूँदें बूँदें टपकाने वाला पहचाने।

इनसे रोकर आँखें धोना आँखें धोने वाला जाने।
अनुभव-विहीन-मतवाला तो तुझको मतवाला ही बोले।
जीवन भर के दुखिया रोले ॥ ८ ॥

वीणा सुनते २ सुशील को निद्रा आ गई। प्रवीणा भी सो गई।

(३)

रात का एक बजा था। सुशील चारपाई से उठ खड़ा हुआ। दीपक जलाया। प्रवीणा अचेत सो रही थी: कुछ विचार उठा। करुणा आई। करुणा में प्रचण्ड क्रोध का सम्मिश्रण हुआ। गृहस्थ जीवन की कठिनाइयां चित्र की भाँति उसकी आंखों में होकर घूम गईं। "क्या इस छोटे से जीवन में कभी भी सुख के दिन दिखाई न देंगे?" इन शब्दों के साथ उसने अपनी विषादपूर्ण आंखें भूखी तपस्विनी के तेजस्वी मुख पर अड़ा दीं। हृदय रो उठा।

"क्या निराशा ही रहेगी?
भवार्णव-विन्यस्त जीवन-नाव क्या यों ही बहेगी।
क्या निराशा० ॥ १ ॥
सोचता सम्पूर्ण-वन्धन डोरियों को तोड़ डालूँ।
विश्वविभ्रामक बटकियों को फटाफट फोड़ डालूँ।
कल्पकाठिन्यातिकुण्ठित कुमति का मग मोड़ डालूँ।
घर्षणा से शस्त्र की क्या धार पैनी ना पड़ेगी?
क्या निराशा० ॥ २ ॥
शान्त हो विभ्रान्त सा होकर दुखों से मैं लड़ा हूँ।
विश्व-संगोपन कलागोपन मिटाने में अड़ा हूँ;
यातनाओं को निमन्त्रण दे चुका हूँ बस, खड़ा हूँ।
प्राण के अन्तिम कणों तक क्या सफलता ना मिलेगी।
क्या निराशा० ॥ ३ ॥

पार कीं मैंने बहुत सी कष्ट की सङ्कीर्ण गलियां।
शुष्क थीं जहँ हो गई कुछ रक्त उर-अनुरक्त नलियां।
चपलता खोने लगी हृत्कमल-कोमल-लोल-कलियाँ।
थी कभी जो चञ्चला वह आज क्या अचला बनेगी।
क्या निराशा० ॥ ४ ॥

आज लौं मैंने कहूँ क्या, राग हैं कितने अलापे।
एषणा अन्वेषणा के हाय! कितने मार्ग मापे।
तीक्ष्ण-सँघर्षण-सुरत्न-मानव-मनोमय-भाव झाँपे।
भाड़ में भुँजती सदा क्या धान्यराशी ही रहेगी?
क्या निराशा० ॥ ५ ॥

हाय! अब इस पतिव्रता का दुख आँखों नहीं देखा जाता। चाहे पत्नी अपनी सुशीलता के कारण कुछ भी न कहे किन्तु यदि मैं उसकी आवश्यताऐं पूरी नहीं कर सकता तो क्या अधिकार है मुझे पति कहाने का? धिक्कार है मेरे जीवन को। अब मैं एक क्षण भी इस अबला का दुख नहीं सह सकूंगा। आज इस दरिद्रता के कारण मेरी विद्या निष्फल हो रही है। आज इस दरिद्रता के कारण मेरी प्रतिभा सो रही है। ऐ मन्द ज्योति से जलने वाले दीपक, आज तुझे जलाने का मेरा अन्तिम समय था। सम्भव है, यह तेरा उजाला अब मैं इन चिरपरिचित भित्तियों पर न देख सकूंगा।" कहता हुआ सुशील प्रवीणा के बाल सम्हालने लगा। "देवि, अब मैं तुम्हारा मधुर गान नहीं सुन सकूंगा। अये प्रवीणा की वीणे, अब मैं तुम्हारी मधुर तान नहीं सुन सकूंगा।" शीघ्रता से एक पत्र लिख कर प्रवीणा की वीणा में रख दिया। फिर प्रवीणा का हस्त चूम कर बोला—"देवि, बिदाई दो।" उन्मत्त की भाँति सुशील घर से निकल पड़ा।

अँधेरी रात थी। हाथ को हाथ न सूझता था। आकाश में चारों ओर बादल छाये हुए थे। बादलों की गरज से सारा वन भयावना दिखाई देता था। बीच-बीच में बिजली की चमक से जङ्गल की मनोहरता की सम्भावना की जा सकती थी। किन्तु साथ ही इस समय शून्यता का साम्राज्य होने से चारों ओर भय ही भय दिखाई देता था। किन्तु नहीं, सांसारिक व्यक्तियों के लिये यह भय था और दार्शनिकों के लिए आनन्द। कवि के लिए यह विशिष्ट कल्पना का समय था और सुशील की आँखों के आगे संसार की असारता भीषण काल रात्रि के रूप में प्रत्यक्ष नाच रही थी। किन्तु वह आगे बढ़ा चला जा रहा था। क्षोम और अशान्ति ने उसके हृदय को कड़ी जंजीरों से कस रखा था। निराशा और आशा का घोर संग्राम था और आत्मा में महत्वकांक्षा की एक लहर उठी थी। आज संसार से घृणा हो चली थी और यह रूक्ष भयङ्कर वन भी उसकी तुलना में सहृदय तथा सुन्दर दिखाई देता था। अचानक कुछ याद आया। याद नहीं आया आँसू आये। मुंह से एक आह निकली और साथ में कुछ शब्द भी—

"शान्त आशा-गगन में दल बादलों का छा गया।
क्या करूं हा! पुष्प खिलने पूर्व ही मुरझा गया॥ १॥
सोचता था भाग्य मम अनुकूल ही पड़ जायगा।
क्या पता था दैवमुख प्रतिकूल को मुड़ जायगा॥ २॥
छोड़ कर संसार को संसार पति की शरण हूँ।
हूँ भला या अब बुरा विश्वाधिपति के चरण हूँ॥ ३॥

कहते कहते वह अपने शरीर को सम्हाल न सका। ज्योंही गिरने लगा कि पीछे से दो हाथों ने पकड़ लिया। पीछे फिर कर देखा तो एक मनुष्य की-सी आकृति प्रतीत हुई। बिजली

चमकी। आंखों से आँखें मिलीं। मालूम हुआ कि वे एक सन्यासी थे। न मालूम कितनी दूर से उसकी अवस्था को निहारते चले आ रहे थे। मुख पर तेज था। बालों का जूड़ा मस्तक पर। भस्म रमाये हुए थे, रुद्राक्ष गले में पड़े थे। उन्होंने कुछ सान्त्वना के शब्द कहे। उनके ये शब्द सुशील को अमृत के समान सुख-कारी थे। महात्मा जी की आज्ञानुसार सुशील उनकी कुटिया में गया वहाँ एक दीपक जल रहा था। अहा! यह तो वही कुटिया थी, यह वही महात्मा थे जो विवाह के समय मिले थे। कुटिया में पहुँच कर उन्होंने उसे एक फल दिया और कहा—बेटा! चिन्ता न कर, यह विश्वाधिपति का प्रसाद है। इसे प्रेम से खा, कल्याण होगा। सुशील ने ईश्वर को अत्यन्त धन्यवाद देते हुए उस फल को खाया और उसकी सब क्षुधा और तृषा शान्त होकर एक अलौकिक सन्तुष्टिका अनुभव होने लगा। उसका मस्तिष्क सारे अनुभवों को केन्द्रित करके गा उठा :—

"जीवन-प्रवाह सा बदल गया।
बचपन की सब आशाओं पर छा गया एक आवरण नया।
जीवन० ॥ १ ॥

शैशव के परदे से मैंने जग की ज्योती जगती देखी।
झिलमिले लोचनों से देखा भव वैभव-भाषित पूर्णतया ॥ २ ॥
सहसा उमङ्ग की लहरी के आवेश भरे वेगों द्वारा।
चित्त के सितार के तारों का दल दलित हुआ झनझना गया ॥३
मस्तिष्क-तन्तुओं ने तनकर तानों का सा सहयोग दिया।
आचरण-स्वरों को सङ्गति से सङ्गत सा हो सङ्गीत गया ॥ ४ ॥
इस तरह साज सज्जित हो मैं सन्तत सितार था बजा रहा।
स्वयमेव सुसम्मत था मुझको मैं जग के मग को भाँप गया ॥५॥

कुछ कालान्तर में आंधी के झोंकों से परदा उड़ा ननिक।
भौंचक्का सा रह गया देख कुछ क्षण को हो संक्षुब्ध गया ॥६॥
साजों का स्वर कन्सरा हुआ अन्तर काअन्तस्तल लखकर।
विज्ञानतन्तु सन्तप्त हुए वेगों में विप्लव व्याप गया ॥ ७ ॥
धारा बदली बदला प्रभाव भावों का जो सम अनुमत थे।
मृगतृष्णा के से दर्शन से अनुरक्त राग का राग गया ॥ ८ ॥
वह पहली राग अलापन की बालापन परिपाटी छोड़ी।
तन्ती तारों की तन्त्री में भर परिवर्तित रव राग गया ॥ ६ ॥

गाते २ सुशील को कुछ तन्द्रा सी आई और वह एक कुशासन पर लेट रहा।

(४)

सूर्य की किरणें प्रवीणा की वीणा पर पड़ीं। प्रवीणा ने आंखें खोलीं। सुशील की शय्या को सूनी देखकर आँखें मलने लगी कि कहीं स्वप्न तो नहीं। इधर उधर दृष्टि घुमाई तो वीणा के तारों में एक पत्र फंसा हुआ दिखाई दिया। बेचैन होगई। पत्र को खोल रही थी किन्तु हाथ काँप रहे थे। पत्र पढ़ा। लिखा था—"देवि, विदाई दो। क्षमा करना। तुम्हारा दुख मुझसे आंखों नहीं देखा जाता। तुम्हारी ओर से कोई त्रुटि नहीं। विवश हूँ। आशा तो नहीं है किन्तु ईश्वर की लीला घड़ी विचित्र है सम्भव है फिर कभी मिलन हो जाये। यदि न भी हो तो देवि, कैसे कहूँ कि इस अयोग्य पति को भुला मत देना? उचित हो वही करना। तुम्हारा............

सुशील।"

पत्र नहीं था अग्नि थी जिसने आंखों के पर्दे पर्दे को सन्तप्त करके उससे, पसीना निकलवा दिया। वह अपने को बार-बार धिक्कारती रोती बिलखती अपनी निष्कलंक करतूत पर पश्चाताप करती कह रही थी—"हा! प्रियतम! मेरा कभी

विचार नहीं था कि भौतिक विपत्तियों का चित्र आपके सम्मुख इस लिये खींचूं कि आप मुझसे विमुख हो जांय। मुझ निराधारा को आपके वियोग की तुलना में संसार की असह्य से असह्य यातनाओं का समुदाय भी तृण के सदृश प्रतीत होता है। किन्तु हाय! मेरे समझने में कुछ भूल हुई। मुझे स्पष्ट रूप से विदित नहीं था कि जिस चित्र को मैं आप के हृदयपटल पर प्रतिविम्बित करने जा रही थी वह तो ज्यों का त्यों पहिले ही वहां अङ्कित था। इस ओर आपके भाव-प्रकाशन को मैं अब तक आपकी नम्रता व सरलता का ही अद्भुत उदाहरण समझती रही। मुझ नवोढ़ा को क्या पता था कि आप "कुसुमस्तबकस्येव द्वयी वृत्ती मनस्विनः। मूर्ध्निवा सर्वलोकस्य विशीर्येत वने अथवा" के क्रियात्मक पक्षपाती हैं। हां, इसकी धुधली सी रेखा मेरे मस्तिष्क पर खिंच चुकी थी और इसी लिये में अपनी आवश्यकताएें प्रकट नहीं करती थी। मैं जीवन की सहधर्मिणी हूँ। क्या आपने मुझे सहधर्मिणी कहने का साहस इसी चरित्र पर किया था। हाँ! नही, यह नही कहूँगी। चरित्र को कलंकित नही करूंगी। स्वच्छन्द स्वाभिमान के विशुद्धस्वरूप के आवेश में आपसे यह कृत्य हुआ है। यह कलङ्क नहीं है। इस त्याग में स्नेह बन्धन ढीला नहीं पड़ा है। किन्तु कुछ भी हो, मेरा मार्ग दूसरा नहीं हो सकता। जिस अज्ञात की ओर आपने प्रस्थान किया है उसी ओर मैं भी अपने अभागे पदों को बढ़ाने का साहस करूंगी त्रिया हूं! साहस कहाँ? किन्तु आजीवन सतीत्व का सङ्कल्प मुझे आपकी आजीवन सहधर्मिणी बनाने में पूर्ण सहायक होगा और बड़ी से बड़ी कठिनाइयों को भी पार करने का साहस प्रदान करेगा। लो सम्हलजावो,। सोचा होगा कि वियुक्त होकर हृदय की वेदना कम हो जायगी। कुछ भी हो,

हृदय अब भी क्रूर नहीं है किन्तु शरीर को भी आपकी सेवा से विमुख क्यों रखूं।" यह कह कर प्रवीणा ने वीणा पर हाथ मारा। वीणा के तार झनझना उठे मानो प्रवीणा का सहयोग देने को तत्पर थे। वीणा उठाकर प्रवीणा चली। दीपक पर दृष्टि पड़ी जो अभी तक ज्योति हीन होकर जल रहा था। फूंक मार कर दीपक को बुझा दिया और इस छोटे से मिट्टी के घर का दीपक सदा के लिए बुझ गया।

जैसे २ प्रवीणा चलती जाती थी, ऐसा प्रतीत होता था मानो मिट्टी के घर का प्रत्येक कण उसे मूक पुकार द्वारा बुला रहा हो। सहसा लौट कर घर आई। रसोई वाले छप्पर में एक पिंजड़ा टंगा हुआ था। एक मैंना इसके भीतर बैठी हुई थी। इसे प्रवीणाने बड़े प्यार से पाला था। डबडबाती आँखों वाली प्रवीणा ने पिंजड़े का द्वार खोल दिया और मैंना के सिर पर हाथ रख कर कहा—"बहन" इतने ही दिनों का सहवास था। मैं अज्ञात की ओर जा रही हूं और तू भी अज्ञात की ओर जा।" मैंना अपने पिंजड़े से उड़ चली और प्रवीणा अपने पिंजड़े से। वीणा बजाती हुई प्रवीणा गाती चली जा रही थी। गान—

क्षण क्षण में नूतनता आई।
उर के इस शान्त सरोवर में संक्षोभ लहर सी उठ आई ॥ १ क्षण०
सुकुमार-कुमारावस्था में संसार सुखी मैंने देखा।
कोमल-मलहीन-हृदय-कलिका पर खेलरही थी पुलकाई ॥ २ क्षण०
भोलेपन में मुझको बिलकुल कुलिश प्रहारसम विषमव्यथा।
का ज्ञान नहीं था, क्यों कर हो ? मैंने तो थी प्रभुता पाई ॥ ३
बालापन बीत चुका अब तो सरलावस्था का अन्त हुआ।
बनकर एक प्रौढ परीक्षा सी प्रौढावस्था मेरी आई ॥ ४ क्षण०

जब से पहले सोचा मैंने जग में जीवन कैसा होगा।
दिवसावलि-सलिलाशय पर से फटती सी देख रही काई ॥ ५ ॥
सुख-शीतलता सिञ्चित-चित की लतिका यह मृदुल मनोहरसी।
दुख की पहली सङ्कीर्ण किरण से किञ्चित्कुञ्चित कुम्हलाई ॥६॥
जीवन के इस सङ्घर्षण ने कण कण का सच्चा ज्ञान दिया।
सङ्कल्प-कल्पना कल्पों की मिट गई अमिट करुणा छाई ॥७॥
इस नई विचित्रावस्था में है नूतनता तनताप लिए।
जो जो अपराजित मन को भी अपने बल से वश में कर लाई॥८॥
करुणे, अभिनन्द नहै तेरा जीवन के काञ्चन कण द्वारा।
जिसको तू चञ्चलामाकर-किरणार्पित करने को आई॥९॥

(५)

उधर सुशील भी जाग चुका था। उठते ही उसकी दृष्टि कुटी पर के उसी लेख पर पड़ा जिसे उसने विवाह के समय पढ़ा था। किन्तु इस समय उसका अभिप्राय तत्क्षण ही उसकी समझ में आ गया। महात्माजी को प्रणाम करके वह एक पगडण्डी पर चल दिया। गान—

"भोले बालापन फिर आजा।
कोमल-कल्पना कलापों का तू ही था इक अनुपम राजा ॥ १ ॥
त्यागा तूने जब से मुझको संसार भार दिखलाता है।
भव-विभव-समीर रुलाता है सुचि-स्वर्ग-सुधा-रस बरसाजा ॥२॥
अम्मा, भय्या, दादा, जीजी, सम्पूर्ण-विश्व संरक्षक थे!
क्या मुझे पड़ी पटरानी से औ कौन कहां का महराजा ॥ ३ ॥
तेरे शुभ शासन-दिवसों में सुख जो मैंने पाये प्रियवर,
उनकी इक मृदुल मनोहर सी हलकी झलकावलि झलका जा ॥४
तेरी प्रिय प्रौ.-प्रणाली के प्राङ्गण में परखी जो मैंने।
आ-जीवन नेता आ जीवन में पुनि पुनीतता बतला जा ॥ ५ ॥

बस, इस इतना ही स्मृत है तूने जो हृदय दयित था दिया मुझे।
दम्भी दार्शनिकन दर्शन में पा सकते उसकी परवा जा ॥ ६ ॥
मेरा वह विश्व निराला था घुस सकता उसमें युवा नहीं।
इससे आहें भर कहता हूँ तरसा जा जा हा! तरसा जा ॥ ७ ॥
रोते रोते उन्मत्त हुवा तेरा संस्मरण किया करता।
आ सूखे हृदय-सरोवर को सारल्य जलों से भरता जा ॥ ८ ॥
यौवन को बिता वृद्ध होकर जीवन से कभी बिछुड़ करके।
ऐ सुहृद, सुहृद्-द्रोहों का सब लूँगा बालक बन बदला जा ॥९॥"

